International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(4): 227-228

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(4): 227-228
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 25-05-2017
Accepted: 26-06-2017

डॉ0 सुशीला कुमारी
सहायक प्रवक्ता, संस्कष्त विभाग,
महिला महाविद्यालय, झोझू कलां
(चरखी दादरी)

Correspondence
डॉ0 सुशीला कुमारी
सहायक प्रवक्ता, संस्कष्त विभाग,
महिला महाविद्यालय, झोझू कलां
(चरखी दादरी)

अक्षर संस्कृतिः वेदों के संदर्भ में

डॉ0 सुशीला कुमारी

प्रस्तावना

व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र के आत्मिक सद्गुणों का वह आलोक जिससे सभी का मंगलमय विकासपथ प्रशस्त होता है चेतना की उसी प्रवृति को संस्कृति के नाम से जाना जाता है। वेद ही भारतीय संस्कृति के उद्गम केन्द्र हैं। इन्ही से ही पुराण , इतिहास, धर्म, दर्शन, ज्ञान आदि की विविध धाराएँ विविध रूपों में प्रसारित हुई है। सृष्टि के अनन्त वैचित्र्य की प्रतीती अक्षर ब्रह्म से ही होती है। संसार में जो कुछ भी हमें अपूर्व दृश्यों की आनन्दमयी अनुभूति होती है, वह अक्षर ब्रह्म की ही चमत्कृति है। शब्द ब्रह्म की लीला भी अक्षर ब्रह्म के अद्वितीय व्यापार की ही परिणति है। यहीं सृष्टि की समस्त नवीनताओं का प्रत्यक्ष कराते हुए अभ्युदय तथा निःश्रेयस् की पूर्णता का अमृत सुलभ कराती है। इस अक्षर ब्रह्म की अडिग निष्ठा ने ही वैदिक श्रुति की सनातन एकरूपता को हमेशा के लिए विश्वसनीय बनाया है। ऋग्वेद के ऋषि ने अक्षर ब्रह्म की अनन्त शक्ति की स्तुति करते हुए कहा भी है – 'ऋचाएँ यजुः, साम और ऋचामन्त्र'–ये सभी अनिश्वर ब्रह्म में ही स्थित है जिसमें सभी देवता (अग्नि, वायु, सूर्यादि) स्थित हैं। जो उसको नहीं जानता वह ऋचा से क्या करेगा ? जो उसे साक्षात् रूप से जानता है। वही संसार के जन्म–मरण के बंधन से विमुक्त हो सकता है।[1] इस अक्षर ब्रह्म की असीम शक्ति का वर्णन हमें उपनिषदों में भी प्राप्त होता है। इस शक्ति में ही समस्त सृष्टि के आविर्भाव एवं तिरोभाव का बोध कराने के लिए महर्षि ने भी अपने भावों को मकड़ी एवं तन्तुओं के समान प्रकट किया है। जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से तन्तुओं को बाहर निकालती है और दूसरी बार उन्हीं तन्तुओं को अपने अन्दर समेट लेती है उसी प्रकार ब्रह्म(अक्षर) के कारण ही पृथ्वी में विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और अन्ततः उसी मे विलीन हो जाती हैं।[2] तपस्या के माध्यम से ही इस अक्षर ब्रह्म की वृद्धि होती है। वृद्धि प्राप्ति के पश्चात् अक्षर ब्रहम से भोग्या प्रकृति (अन्नादि) उत्पन्न होती है। भोग्या प्रकृति से प्राण, महद्तत्व, इन्द्रियाँ, स्थूल तथा सूक्ष्म भूत, तीनों लोक उत्पन्न होते हैं।[3]

रूपात्मक भाषा में इसके सृष्टिव्यापी अस्तित्व का वर्णन करते हुए कहा है कि अक्षर–ब्रह्म स्वरूप पुरूष का द्युलोक सिर, सूर्य–चन्द्र आँखे, दिशाएँ कान और खुले हुए वेद इसकी वाणी है। वायु प्राण, विश्व हृदय और पृथ्वी चरण हैं। संसार में ज्ञान–विज्ञान का जो प्रकाश है वह अक्षर–ब्रहम के कारण ही है और मनुष्य मुक्ति का मार्ग इसी के कारण ही प्राप्त करता है।[4]

वैज्ञानिक अनुसंधान की जिस नवीन स्पर्धा में सूर्य–चन्द्र आदि पर जो मानव जीवन का संरक्षण है वह भी अक्षर–ब्रह्म की सत्–असत् माया का ही प्रमाण है। काल प्रवाह की प्रतीति भी इसी कारण है।[5] मनुष्य जो भी अदृष्ट प्रमाणों को दृष्ट मानता है, अज्ञात बातों को ज्ञात करता है वह अक्षर–ब्रह्म के कारण ही तो करता है।[6] अक्षर–ब्रह्म की पूर्णता का आदर्श उपास्य प्रतीक 'ऊँ' के रूप में प्रतिष्ठित है। उपनिषदों में इसकी महनीयता का अनेक रूपों में प्रत्यक्ष कराया गया है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान जो कुछ है वह सब कुछ ऊँकार ही है। 'कठोपनिषद' में यमराज ने नचिकेता से सब प्रकार की साधनाओं का चरम ध्येय 'ऊँ' की पूर्ण प्रतीति कहा है –

हे नचिकेता– सब वेद जिस पद को बार–बार पढ़ते है और तपस्वियों के सब तप जिसको अपना लक्ष्य सूचित करते हैं, जिसकी प्राप्ति की इच्छा करते हुए जिज्ञासु गृहस्थ गुरू के समीप ब्रहमचर्यवास करते हैं वह पद तुम्हें संक्षेप रूप में कहता हूँ ओम अक्षर है।[7] इसकी तत्वानुभूति की पूर्णता द्वारा सब प्रकार की अभीष्ट सिद्धि सुलभ होती है। यह अक्षर निश्चय ही ब्रह्म है और यहीं अक्षर परब्रह्म है।[8] यह ओम् सभी आश्रयों से श्रेष्ठ आश्रय है। इसी आश्रय के कारण मनुष्य परमतत्त्व (ब्रह्मलोक) में महिला को प्राप्त करता है।[9] पर एवं अपर ब्रह्म को वे ओम् में ही देखते हैं।[10] 'ऊँ' में तीन मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक मात्रा में ब्रह्म का ध्यान करने से मनुष्य को जिस प्रकार की सिद्धि सुलभ होती है इसका विशद् वर्णन किया गया है।

यदि एक मात्रा रूप ब्रह्म का ध्यान करे तो वह उसी ब्रह्म के साथ एकता को प्राप्त करता हुआ पृथ्वी के किसी भरा में स्थित होता है। उसको ऋचामन्त्र मनुष्य शरीर में ले जाते हैं। वह वहाँ तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा से युक्त होकर सर्वाग्ड.पूर्ण मनुष्य सुख का अनुभव करता है।[11] अकार रूप अक्षर–ब्रह्म का वर्णन पुराणों में भी किया गया है।[12] भगवान श्रीकृष्ण ने भी आत्मस्वरूप अकार को ही माना है।[13] वैज्ञानिक दृष्टि से भी भगवान श्रीकृष्ण एवं पुराणों की बातें सर्वथा सिद्ध भी होती हैं।

महर्षि पाणिनि ने जिन चौदह प्रत्याहार सूत्रों के द्वारा व्याकरण की रचना की है उनमें 'अल्' प्रत्याहार ही सभी प्रत्याहारों का मूल है। 'ल' के अनुबन्ध मात्र होने के कारण केवल 'अ' की ही सार्थकता है। वायुपुराण में इस रहस्य का प्रत्यक्ष भी प्राप्त होता है।[14] यदि मनुष्य 'अ' तथा 'उ' रूप औंकार से ब्रह्म का ध्यान करता है तो वह स्वर्गीय शरीर को प्राप्त करता है और स्वर्ग में ऐश्वर्य का भोग कर पुनः संसार में लौट आता है। अकार की भाँति ही उकार की महनीयता जीवन व्यापिनी है। अकार का स्थान कण्ठ और उकार का स्थान ओष्ठ है। कण्ठ और ओष्ठ के मध्य से वर्ण–समष्टि का उच्चारण होता है। इस प्रकार समस्त सृष्टि का रहस्य इनकी स्वानुभूति में विद्यमान है, इसे किसी प्रकार भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता हैं। उकार के महत्व की प्रतीति इस प्रकार मिलती है।[15] मकार से युक्त तीन मात्रा रूप ऊँ का ध्यान तेजस्विता में सूर्य को महिमामयी–परिणति प्रदान करता है। जिस प्रकार साँप केंचुली को छोड़ देता है, उसी प्रकार मनुष्य सब पापों से विमुक्त हो जाता है। साम के मन्त्र उसे ब्रह्मलोक से ऊपर ले जाते हैं। वहाँ वह जीव समष्टिमय श्रेष्ठ ब्रह्मलोक से भी परे समस्त शरीरों में अन्तरात्मा परब्रह्म को देखता है।

अपनी वैज्ञानिक सार्थकता की पूर्णता के कारण पुराणों में भी ऊँ की तत्वानुभूति का अभिनन्द मिलता है।[17] शतपथ ब्राह्मण, निरूक्त तथा पुराणों में धातुगत अक्षर की सार्थकता के अनेकों मार्मिक संकेत मिलते हैं। श्रीमद्भागवत् महापुराण में भी हमें इसके दर्शन होते हैं।[18] पाणिनीय शिक्षा को 'शास्त्रानुपूर्वं तद्वियाद् यथोक्तं लोकवेदयो'' कहा है। अक्षर–सृष्टि के विषय में वर्णन इस प्रकार किया है– आत्मा बुद्धि के द्वारा वक्तव्य विषय से मिलकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करता है, मन जठराग्नि को प्रेरित करता है और कायाग्नि वायु को प्रेरित करती है। अनुप्राणित वायु गलबिल का धक्का खाकर मुख को प्रापत करता है और वर्णों की प्रतीति कराता है। उन वर्णों का विभाग पाँच प्रकार से कहा गया है। वर्णों के उच्चारण में अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिए। यथा–व्याघ्री अपने बच्चे को दाँतों से पकड़ती है, पर इतनी सावधानीपूर्वक पकड़ती है कि न तो दाँत बच्चे को लगते हैं और न ही उनसे बच्चा नीचे गिरता है।[19] वर्णों का उच्चारण सावधानीपूर्वक न करने से लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक रहती है। जिस प्रकार वृत्रासुर ने इन्द्र को पराजित करने के लिए यज्ञ कराया परन्तु याज्ञिकों ने मन्त्र के स्वर को ही बदल दिया जिसके कारण उसे पराजित होना पड़ा।[20] इसलिए 'अर्धमात्रा लाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः'' कहा गया है। शक्ति के अस्तित्व को 'अर्धमात्रा स्थिताः' कहा गया है।[21]

इस प्रकार दिव्यभाव की समस्त ध्वनियों का निष्ठतामूलक निर्वचन हमें संस्कृत वाड्.मय में सर्वत्र लक्षित होता है। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि समस्त साहित्य–सिद्धान्तों द्वारा इसकी पूर्ण पुष्टि हुई है। कविवर कालिदास ने शिशु रघु की वर्ण–शिक्षा को समस्त ज्ञान का हेतु सिद्ध किया है।[22]

निष्कर्षतः वैदिक वाड्.मय की सांस्कृति चेतना जितनी आधिभौतिक है उतनी ही आध्यात्मिक भी है। केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही वैदिक संस्कृति को देखने का प्रयास एकांगी बनकर ही सामने आता है। अर्थ एवं काम की आसक्ति मानव–चेतना के व्यवहारिक विकास–पथ को प्रशस्त बनाती है। इन दोनों की आधार शक्ति तप, निष्ठा एवं अक्षर–ब्रह्म है।

संधर्व सूची

1. ऋचोअक्षरे ..... इमे समासते। ऋग्वेद 1.164.39
2. यथा उर्णनाभी सृजते ..... विश्वम्।।
3. तपसा चीयते ..... चामृतम्।।
4. तद् एतद् ..... तद् अमृतम्।।
5. एतस्य वै ..... विधृता तिष्ठन्ति।। याज्ञवलक्स्य ऋषि
6. अदृष्टं दृष्टं ..... अविज्ञातं विज्ञातृ।।
7. सर्वे वेदा..... ओम् इति एतत्।। कठोपनिषद्
8. एतद् हि.....तस्य तत्।। कठोपनिषद्
9. एतद् आलम्बनं ..... ब्रह्मलोके महीयते।।
10. परं च अपरं च ब्रह्म ओंकारः।।
11. स यदि एकमात्रं ..... महिमानमनुभवति।
12. क. अकारस्तु महद् बीजं रजस्त्रष्टा चतुर्मुखः। शिवमहापुराण
    ख. अकारो भगवान ब्रहमाप्युकारः स्यद्धरिः स्वयम्।। देवीभागवत
13. अक्षराणाम् अकारोऽस्मि। गीता
14. तस्मात्त्रिषष्टिर्वर्णाः वै अकारप्रभवाः स्मृताः। वायुपुराण 26, 27
    चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः।
    ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः। वायुपुराण26.31
15. उकारः स्याद् हरिः स्वयम्।। देवी भागवत
    उकारः प्रकृतियोनिस्सत्त्वं पालयिता हरिः।। शिवमहापुराण
16. मकार पुरूषों बीजी तमस्संहारको हरः। शिवमहापुराण
    मकारो भगवान रूद्रः।। देवी भागवत पुराण
17. क ओमित्येकाक्षरं ..... लोकास्त्रयोऽग्नयः। वायुपुराण
    ख ध्रुवमेकाक्षरं ..... तद्ब्रह्मेत्याभिधीयते। विष्णुपुराण
    ग ओमित्येकाक्षरे ..... सर्वगश्श्वः। शिवमपुराण
18. स एषः जीवो ..... इति स्थविष्टः।। श्रीमद्भागवत् महापुराण
19. क आत्मा बुद्धया ..... तन्निबोधय। पाणीनीय शिक्षा
    ख व्याघ्री यथा ..... प्रयोजयेत्।। पाणीनीय शिक्षा
20. मन्त्रोहीनः ..... स्वरतोऽपराधात्।। ऋग्वेद
21. क अर्धमात्रा महेशानी बिन्दुनाद स्वरूपिणी। शिवमहापुराण
    ख अर्धमात्रा महेश्वरी।। देवीभागवत्
22. लिपेर्यथावद् ..... समुद्रमाविशत् रघुवंशम्